[2010] 6 एस.सी.आर 191

मो. आशिफ एवं अन्य

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

(2010 की दीवानी अपील संख्या 4256-4257)

6 मई, 2010

**[जे.एम. पंचाल एवं टी.एस. ठाकुर, न्यायमूर्तिगण]**

*सेवा विधि - सेवा समाप्ति - अवैध प्रारंभिक नियुक्ति के आधार पर - स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता, जो राज्य द्वारा संचालित औषधालयों में मासिक मानदेय पर कार्यरत थे - प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में नियमितीकरण/समायोजन के माध्यम से नियुक्त - उन्होंने इस प्रकार 15 वर्षों तक कार्य किया, जिसके पश्चात इस आधार पर उनकी सेवा समाप्त कर दी गई कि उनकी प्रारंभिक नियुक्तियाँ प्रत्यक्षतः अवैध थीं - इसका औचित्य - अभिनिर्धारितः न्यायोचित - नियुक्ति प्रक्रिया स्वयं सार्वजनिक रोजगार के अंतर्निहित संवैधानिक ढांचे का पूरी तरह से उल्लंघन करती थी - ऐसी नियुक्तियाँ प्रदान करते समय किसी भी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था - मुख्य चिकित्सा अधिकारी, जिन्होंने नियुक्तियाँ की थीं, उनके पास ऐसा करने की शक्ति निहित नहीं थी, और न ही नियुक्तियों के लिए पात्र अन्य उम्मीदवारों के दावों पर विचार किया गया था - न्यायालय ऐसी अवैधता को जारी रखने की अनुमति नहीं दे सकता, चाहे वह कितने भी समय से जारी क्यों न रही हो - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 और 16।*

**अपीलकर्ताओं राज्य द्वारा संचालित औषधालयों में 50/- रुपये के मासिक मानदेय पर स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में कार्यरत थे। कुछ समय पश्चात, उन्हें नियमित वेतनमान पर प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में नियमितीकरण/समायोजन के माध्यम से नियुक्त किया गया और उन्होंने इस प्रकार 15 वर्षों तक कार्य किया। बाद में, उनकी सेवाएँ इस आधार पर समाप्त कर दी गईं कि उनकी प्रारंभिक नियुक्तियाँ प्रत्यक्षतः अवैध थीं।**

**अपीलकर्ताओं ने अपनी सेवा समाप्ति को उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने इस आधार पर सेवा समाप्ति को खारिज कर दिया कि यह 15 साल पहले हुई एक कथित अनियमितता पर आधारित थी। हालाँकि, उत्तरदाता-राज्य द्वारा दायर लेटर्स पेटेंट अपील में, खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर**

दिया और कहा कि चूँकि अपीलकर्ताओं की प्रारंभिक नियुक्ति अवैध थी, इसलिए यह तथ्य कि अपीलकर्ताओं ने लंबे समय तक काम किया था, उस दोष को दूर नहीं करता जिससे उनकी सेवा में बहाली को उचित ठहराया जा सके। इसलिए वर्तमान अपीलें।

अपीलों को खारिज करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित:1.1. किसी कर्मचारी के अपनी सेवाओं के नियमितीकरण की मांग करने के अधिकार के संबंध में विधिक स्थिति इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा तय की गई है। इस न्यायालय ने माना है कि किसी कर्मचारी की सेवाओं के नियमितीकरण का प्रश्न दो आकस्मिकताओं में उत्पन्न हो सकता है। यह पहली बार उन स्थितियों में उत्पन्न हो सकता है जहां किसी उपलब्ध स्पष्ट रिक्ति के विरुद्ध ऐसा करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा तदर्थ या दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्ति की जाती है और ऐसी नियुक्ति समय-समय पर सेवा में किसी कृत्रिम विराम के बिना जारी रहती है। ऐसी किसी भी नियुक्ति को उसे कार्यकाल की सुरक्षा देते हुए नियमित किया जा सकता है। इस तरह के नियमितीकरण के लिए सभी महत्वपूर्ण शर्त यह है कि ऐसे कर्मचारी की प्रारंभिक प्रविष्टि स्वीकृत रिक्ति के विरुद्ध और ऐसी प्रविष्टि को नियंत्रित करने वाले नियमों और विनियमों का पालन करते हुए की जानी चाहिए। [कंडिका 6] [197-एफ-एच; 198-ए]

1.2. दूसरी स्थिति जिसमें नियमितीकरण दिया जा सकता था, वह थी जहाँ किसी उपलब्ध रिक्ति के विरुद्ध कर्मचारी की प्रारंभिक प्रविष्टि नियुक्ति करने की प्रक्रिया में कुछ खामियों से ग्रस्त पाई गई थी, हालाँकि नियुक्ति करने वाला व्यक्ति ऐसी प्रारंभिक भर्ती करने के लिए सक्षम था और उसने ऐसी भर्ती के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया था। तब प्रारंभिक नियुक्ति में किसी भी प्रकार की अनियमितता को ठीक करने और पदधारी को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियमितीकरण की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है। ऐसी स्थितियों में यह आवश्यक है कि कर्मचारी की प्रारंभिक प्रविष्टि पूरी तरह से अवैध न हो या ऐसी भर्ती को नियंत्रित करने वाले स्थापित नियमों और विनियमों का उल्लंघन न करती हो। [कंडिका 7] [198-बी-डी]

1.3. नियुक्ति करने में अनियमितता और अवैधता के बीच अंतर है। जहां नियुक्ति की उचित प्रक्रिया से विचलन हुआ है, न्यायालय उसे नियमित कर सकता है। ऐसे मामलों में जहां प्रक्रिया स्वयं सार्वजनिक रोजगार में अंतर्निहित संवैधानिक योजना का पूरी तरह से उल्लंघन करती है और ऐसी नियुक्तियां प्रदान करते समय कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई है,

न्यायालय ऐसी अवैधता को जारी रखने की अनुमति नहीं दे सकता है, चाहे वह कितने भी समय तक जारी रही हो। [कंडिका 8] [198-ई-जी]

1.4. वर्तमान वाद में, इसमें कोई खंडन नहीं है कि प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में अपीलकर्ताओं की नियुक्तियां पूरी तरह से अवैध थीं और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करती थीं, जो उन सभी लोगों को अवसर की समानता की गारंटी देते हैं जो अन्यथा ऐसी नियुक्तियों के लिए पात्र थे। नियुक्तियां करने वाले मुख्य चिकित्सा अधिकारी के पास ऐसा करने की शक्ति निहित नहीं थी और न ही उन पदों के विरुद्ध नियुक्ति के लिए पात्र अन्य उम्मीदवारों के दावों पर विचार किया गया, जिन पर अपीलकर्ताओं को नियुक्त किया गया था। आश्चर्य की बात यह है कि ये नियुक्तियाँ अपीलकर्ताओं के आमेलन के माध्यम से हुई थीं, जो मात्र ₹ 50/- मासिक मानदेय पर स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में काम कर रहे थे। [कंडिका 11] [202-डी-जी]

1.5. उच्च न्यायालय ने सही माना कि राज्य द्वारा संचालित औषधालयों में मानदेय पर कार्यरत स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का कोई संवर्ग नहीं था। अपीलकर्ताओं को स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में दी गई नियुक्ति का स्वरूप ही मानद था, जिसके तहत उन्हें प्रति माह ₹ 50/- से अधिक का भुगतान नहीं मिलता था। यह समझना कठिन है कि मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने मानद सेवा कर रहे ऐसे स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के पद पर कैसे नियमित/समायोजित किया, जिनका वेतनमान नियमित था और जिन्हें केवल उस उद्देश्य के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही भरा जा सकता था। इस प्रकार, उक्त पदों पर अपीलकर्ताओं की नियुक्ति स्पष्ट रूप से अवैध और पूरी तरह से अनुचित थी। चूँकि ये नियुक्तियाँ उक्त निर्देशों के अनुसरण में लगभग डेढ़ दशक बाद रद्द की गईं, इसलिए समाप्ति को अवैध नहीं कहा जा सकता, जिससे अवैध रूप से नियुक्त लोगों की बहाली के लिए रिट न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। इस मामले को देखते हुए, उच्च न्यायालय डी द्वारा रद्दीकरण के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार करना और विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाओं को खारिज करना उचित था। [कंडिका 11] [202-एफ-एच; 203-ए-सी]

*सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी (3) एवं अन्य,* **(2006) 4 एससीसी 1, अनुसरण किया गया.**

*अश्वनी कुमार एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,* एआईआर **1997 एससी 1628;** *मोहम्मद अब्दुल कादिर एवं अन्य बनाम पुलिस महानिदेशालय, असम एवं अन्य,* **(2009) 6**

**एससीसी 611;** *पिनाकी चटर्जी बनाम भारत संघ एवं अन्य,* **(2009) 5 एससीसी 193** और *महाप्रबंधक, उत्तरांचल जल संस्थान बनाम लक्ष्मी देवी एवं अन्य,* **(2009) 7 एससीसी 205, पर अवलम्बित।**

*रोशनी देवी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य,* **(1998) 8 एससीसी 59;** *भारत संघ एवं अन्य बनाम किशोरीलाल बबलानी,* **एआईआर 1999 एससी 517;** *मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम धरम बीर,* **(1998) 6 एससीसी 165;** *सूबेदार सिंह एवं अन्य बनाम जिला न्यायाधीश, मिर्जापुर एवं अन्य,* **एआईआर 2001 एससी 201;** *कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम जी.वी. चंद्रशेखर,* **(2009) 4 एससीसी 342** और *उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम पूरन चंद्र पांडे एवं अन्य,* **(2007) 11 एससीसी 92, संदर्भित।**

**नजीर संदर्भ:**

| | | |
|---|---|---|
| **(1998) 8 एससीसी 59** | **संदर्भित** | **कंडिका 4** |
| **एआईआर 1999 एससी 517** | **संदर्भित** | **कंडिका 4** |
| **एआईआर 1997 एससी 1628** | **अवलम्बित** | **कंडिका 5** |
| **(1998) 6 एससीसी 165** | **संदर्भित** | **कंडिका 5** |
| **एआईआर 2001 एससी 201** | **संदर्भित** | **कंडिका 5** |
| **(2006) 4 एससीसी 1** | **अनुसरण किया गया** | **कंडिका 8** |
| **(2009) 6 एससीसी 611** | **अवलम्बित** | **कंडिका 9** |
| **(2009) 4 एससीसी 342** | **संदर्भित** | **कंडिका 9** |
| **(2007) 11 एससीसी 92** | **संदर्भित** | **कंडिका 9** |
| **(2009) 5 एससीसी 193** | **अवलम्बित** | **कंडिका 10** |
| **(2009) 7 एससीसी 205** | **अवलम्बित** | **कंडिका 10** |

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2010 की दीवानी अपील संख्या 4256-4257

पटना उच्च न्यायालय के एल.पी.ए. संख्या 33/2002 के 16.04.2003 के निर्णय एवं आदेश से:

के.के. राय, अम्भोज कुमार सिन्हा अपीलकर्ताओं के लिए।

मनीष कुमार, गोपाल सिंह उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

**टी.एस. ठाकुर न्यायमूर्ति।** 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. विशेष अनुमति द्वारा ये अपीलें पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित आदेश से उत्पन्न हुई हैं, जिसके तहत 2002 की लेटर्स पेटेंट अपील संख्या 33 और 540 को अनुमति दी गई है, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया गया और 2001 की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका संख्या 11701 और 9024 को खारिज कर दिया गया।

3. इन अपीलों में अपीलकर्ताओं को जून 1985 में बिहार राज्य के दरभंगा जिले में राज्य द्वारा संचालित औषधालयों में स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया था। उनकी सेवाओं के बदले उन्हें मात्र ₹50/- मासिक मानदेय दिया जाता था। अपनी प्रारंभिक नियुक्ति के पांच महीने से भी कम समय में उन्हें मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में समाहित कर लिया गया, जिसका वेतनमान ₹535-765 था। यह विवाद का विषय नहीं है कि अपीलकर्ता लगभग 15 वर्षों तक प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में काम करते रहे, जब तक कि 20 फरवरी, 2001 के एक आदेश द्वारा उनकी सेवाएं इस आधार पर समाप्त नहीं कर दी गईं कि प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में उनकी पदोन्नति/समायोजन अवैध और नियमों के विपरीत था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सेवा समाप्ति श्रेणी III के पदों पर नियुक्तियों में अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में एक जांच के अनुसरण में हुई। जाँच से पता चला कि ये नियुक्तियाँ बिहार राज्य के मुख्य सचिव द्वारा 3 दिसंबर, 1980 को जारी तीन परिपत्रों/निर्देशों का उल्लंघन थीं। इन परिपत्रों में बताया गया था कि श्रेणी III के पदों पर नियुक्तियाँ राज्य सरकार द्वारा 10 जुलाई, 1980 और 26 सितंबर, 1980 के दो परिपत्रों में निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करके की गई थीं। इसलिए, सरकार ने सभी विभागाध्यक्षों, प्रमंडलीय आयुक्तों और जिलाधिकारियों को निर्देश दिया कि वे इस प्रणाली की समीक्षा करें और अपनी रिपोर्ट भेजें ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि रिक्त पदों को भरने की कार्रवाई निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जाए। यह भी निर्देश दिया गया

कि निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करके की गई नियुक्तियाँ न केवल ऐसी नियुक्तियाँ करने वालों के विरुद्ध कार्रवाई की माँग करेंगी, बल्कि नियुक्तियाँ रद्द भी की जा सकती हैं।

4. प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में उनकी सेवाओं की सेवा समाप्ति और स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं में वापसी से व्यथित होकर अपीलकर्ताओं ने पटना उच्च न्यायालय में 2001 की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका संख्या 11701 और 9024 दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह दावा किया गया कि याचिकाकर्ताओं (यहां अपीलकर्ता) की नियुक्तियां उचित विज्ञापन के बाद की गई थीं और नियुक्तियां करने में कथित अनियमितता के 15 साल बाद उनकी सेवाओं की समाप्ति अनुचित और कानूनी रूप से अस्वीकार्य थी। 9 नवंबर, 2001 के आदेश के द्वारा पटना उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने अपीलकर्ताओं की सेवाओं की समाप्ति को अवैध माना क्योंकि यह 15 साल पहले की गई कथित अनियमितता पर आधारित थी। समर्थन में *रोशनी देवी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य* (1998) 8 एससीसी 59 और *भारत संघ एवं अन्य बनाम किशोरीलाल बबलानी* (एआईआर 1999 एससी 517) में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा रखा गया।

5. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बिहार राज्य द्वारा दायर 2000 के लेटर्स पेटेंट अपील संख्या 33 और 540 में एक खंडपीठ के समक्ष चुनौती दी गई थी। खंडपीठ ने राय व्यक्त की कि चूंकि यहां अपीलकर्ताओं की प्रारंभिक नियुक्ति अवैध थी, इसलिए अपीलकर्ताओं द्वारा लंबी अवधि तक काम करने के तथ्य से उस दोष का निवारण नहीं होता है जिससे उनकी सेवा में बहाली को उचित ठहराया जा सके। उस दृष्टिकोण के समर्थन में खंडपीठ ने *अश्विनी कुमार एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य* (एआईआर 1997 एससी 1628), *मध्य प्रदेश राज्य एवं एक अन्य बनाम धरम बीर* (1998) 6 एससीसी 165 और *सूबेदार सिंह एवं अन्य बनाम जिला न्यायाधीश, मिर्जापुर एवं एक अन्य* (एआईआर 2001 एससी 201) में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा रखा। वर्तमान अपीलें उक्त आदेश की सत्यता पर प्रश्न उठाती हैं जैसा कि पहले ही ऊपर देखा जा चुका है।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है। किसी कर्मचारी द्वारा अपनी सेवाओं के नियमितीकरण की मांग करने के अधिकार से संबंधित विधिक स्थिति इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा स्थापित हो चुकी है। *अश्विनी कुमार* (उपरोक्त) के वाद  में इस न्यायालय ने घोषित किया कि किसी कर्मचारी की सेवाओं के नियमितीकरण का प्रश्न दो आकस्मिकताओं में उत्पन्न हो सकता है। यह पहली बार उन स्थितियों में उत्पन्न हो सकता है, जहां किसी उपलब्ध स्पष्ट रिक्ति के विरुद्ध किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा तदर्थ या दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्ति की जाती है और ऐसी नियुक्ति समय-समय पर सेवा में किसी कृत्रिम विराम के बिना जारी रहती है। ऐसी किसी भी नियुक्ति को उसे कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान करते हुए नियमित किया जा सकता है। ऐसे नियमितीकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि ऐसे कर्मचारी की प्रारंभिक नियुक्ति स्वीकृत रिक्ति के विरुद्ध और ऐसी नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले नियमों और विनियमों का पालन करते हुए की जानी चाहिए।

7. दूसरी स्थिति जिसमें नियमितीकरण प्रदान किया जा सकता था, वह थी जहाँ किसी उपलब्ध रिक्ति के विरुद्ध कर्मचारी का प्रारंभिक प्रवेश नियुक्ति करने की प्रक्रिया में कुछ त्रुटियों से ग्रस्त पाया गया था, यद्यपि नियुक्ति करने वाला व्यक्ति ऐसी प्रारंभिक भर्ती करने के लिए सक्षम था और उसने अन्यथा ऐसी भर्ती के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया था। तब सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रारंभिक नियुक्ति के नियमितीकरण की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है, जिसका उद्देश्य उसमें हुई किसी भी अनियमितता को सुधारना और पदधारी को सेवा की सुरक्षा प्रदान करना हो। ऐसी स्थितियों में यह आवश्यक है कि कर्मचारी का प्रारंभिक प्रवेश पूरी तरह से अवैध न हो या ऐसी भर्ती को नियंत्रित करने वाले स्थापित नियमों और विनियमों के उल्लंघन में न हो।

8. कर्मचारियों के नियमितीकरण से संबंधित कानून की व्यापक समीक्षा के बाद, इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा सचिव, *सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी*

*(3) एवं अन्य* (2006) 4 एससीसी 1 के वाद में आधिकारिक तौर पर घोषणा की गई थी। इस न्यायालय ने उस मामले में नियुक्ति करने में हुई 'अनियमितता' और 'अवैधता' के बीच अंतर स्पष्ट किया और यह घोषित किया कि जहाँ नियुक्ति की उचित प्रक्रिया से विचलन हुआ है, वहाँ न्यायालय उसे नियमित कर सकता है। लेकिन उन मामलों में, जहाँ प्रक्रिया स्वयं सार्वजनिक रोजगार के अंतर्निहित संवैधानिक ढांचे का पूरी तरह से उल्लंघन करती है और ऐसी नियुक्तियाँ प्रदान करते समय किसी भी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, वहाँ न्यायालय ऐसी अवैधता को जारी रखने की अनुमति नहीं दे सकता, चाहे वह कितने भी समय से जारी क्यों न रही हो। इस न्यायालय के *अश्विनी कुमार* (उपरोक्त) के वाद में दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए, *उमा देवी* (उपरोक्त) के वाद में इस न्यायालय ने यह अवलोकन किया:

> "इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक रोजगार में समानता के नियम का पालन हमारे संविधान की एक मूलभूत विशेषता है और चूँकि विधि का शासन हमारे संविधान का मूल है, इसलिए न्यायालय अनुच्छेद 14 के उल्लंघन को उचित ठहराने या संविधान के अनुच्छेद 16 के साथ अनुच्छेद 14 की आवश्यकताओं के अनुपालन की आवश्यकता की अनदेखी करने का आदेश देने से निश्चित रूप से वंचित होगा । इसलिए, सार्वजनिक रोजगार की योजना के अनुरूप, इस न्यायालय को कानून बनाते समय यह अनिवार्य रूप से मानना होगा कि जब तक नियुक्ति प्रासंगिक नियमों के अनुसार और योग्य व्यक्तियों के बीच उचित प्रतिस्पर्धा के बाद न हो, तब तक वह नियुक्त व्यक्ति को कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगी। यदि यह संविदात्मक नियुक्ति है, तो नियुक्ति अनुबंध की समाप्ति पर समाप्त हो जाती है, यदि यह दैनिक वेतन या अस्थायी आधार पर की गई नियुक्ति या संलग्नता होती, तो उसके बंद होते ही वह समाप्त मानी जाती। इसी प्रकार, एक अस्थायी कर्मचारी अपनी नियुक्ति की अवधि समाप्त होने पर स्थायी होने का दावा नहीं कर सकता। यह भी स्पष्ट किया जाना

चाहिए कि केवल इसलिए कि एक अस्थायी कर्मचारी या आकस्मिक वेतनभोगी कर्मचारी अपनी नियुक्ति की अवधि से अधिक समय तक बना रहता है, नियुक्ति के बाद, यदि मूल नियुक्ति प्रासंगिक नियमों द्वारा परिकल्पित चयन प्रक्रिया का पालन करके नहीं की गई थी, तो वह केवल ऐसी निरंतरता के आधार पर नियमित सेवा में आमेलित या स्थायी होने का हकदार नहीं होगा। न्यायालय अस्थायी कर्मचारियों, जिनकी सेवा अवधि समाप्त हो चुकी है, या तदर्थ कर्मचारियों, जो अपनी नियुक्ति की प्रकृति के कारण कोई अधिकार प्राप्त नहीं करते हैं, के कहने पर नियमित भर्ती को रोकने के लिए स्वतंत्र नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्य करने वाले उच्च न्यायालयों को सामान्यतः आमेलन, नियमितीकरण या स्थायी निरंतरता के निर्देश जारी नहीं करने चाहिए, जब तक कि भर्ती स्वयं नियमित रूप से और संवैधानिक योजना के अनुसार न की गई हो। केवल इसलिए कि कोई कर्मचारी न्यायालय के आदेश की आड़ में सेवा में बना रहा, जिसे हमने निर्णय के पूर्व भाग में "विवादास्पद नियुक्ति" कहा है, वह सेवा में आमेलित या स्थायी होने के किसी भी अधिकार का हकदार नहीं होगा। वास्तव में, ऐसे मामलों में, उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश जारी करना उचित नहीं हो सकता है, क्योंकि, आखिरकार, यदि अंततः उसके पास आने वाला कर्मचारी राहत पाने का हकदार पाया जाता है, तो उसके लिए राहत को इस तरह से ढालना संभव हो सकता है कि अंततः उसे कोई नुकसान न हो, जबकि उसकी नौकरी जारी रखने का अंतरिम निर्देश चयन की नियमित प्रक्रिया को रोक देगा या राज्य पर ऐसे कर्मचारी को भुगतान करने का भार डाल देगा जिसकी वास्तव में आवश्यकता नहीं है। न्यायालयों को यह सुनिश्चित करने में सावधानी बरतनी चाहिए कि वे राज्य या उसके तंत्रों द्वारा उसके मामलों की आर्थिक व्यवस्था में अनुचित रूप से हस्तक्षेप न करें या संवैधानिक और वैधानिक आदेशों को दरकिनार करने में मदद करने के लिए खुद को साधन न दें।"

9. न्यायालय द्वारा *मोहम्मद अब्दुल कादिर एवं एक अन्य बनाम पुलिस महानिदेशालय, असम एवं अन्य* (2009) 6 एससीसी 611 के वाद में उपरोक्त निर्णय का अनुसरण किया गया है, जहाँ इस न्यायालय ने निर्णीत किया कि जो कर्मचारी किसी योजना के संबंध में भर्ती किए गए थे, वे सेवा में निरंतरता या नियमितीकरण का दावा नहीं कर सकते, भले ही उन्होंने दो दशकों तक तदर्थ आधार पर कार्य किया हो। इस न्यायालय के *कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम जी.वी. चंद्रशेखर* (2009) 4 एससीसी 342 के निर्णय में एक बार फिर कानूनी स्थिति को दोहराया गया और यह घोषित किया गया कि उत्तर प्रदेश राज्य *विद्युत बोर्ड बनाम पूरन चंद्र पांडे एवं अन्य* (2007) 11 एससीसी 92 में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की गई टिप्पणियां केवल इतरकथन की प्रकृति की थीं। *पूरन चंद्र पांडे* (उपरोक्त) के वाद में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने *उमा देवी* (उपरोक्त) के वाद में इस न्यायालय के निर्णय के आधार में अंतर करने का प्रयास किया था और यह अभिनिर्धारित किया था कि उक्त निर्णय को संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए और इसे यांत्रिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। *जी. वी. चंद्रशेखर* (उपरोक्त) के वाद में उस तर्क को सही नहीं पाया गया, जैसा कि उक्त निर्णय में आने वाले निम्नलिखित कंडिका से स्पष्ट है:

> "90. हमें यह जानकर खेद हो रहा है कि इस विषय पर अनेक निर्णयों के बावजूद, न्यायिक अनुशासन के मूल सिद्धांतों के उल्लंघन से जुड़े मामलों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। उच्च न्यायालयों के विद्वान एकल न्यायाधीश और पीठ, तथ्यों में मामूली अंतर का हवाला देकर, समन्वित और यहाँ तक कि बड़ी पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों और कानूनों का पालन करने और उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर देते हैं। इसलिए, यह दोहराना आवश्यक हो गया है कि संवैधानिक मूल्यों का अनादर और अनुशासन भंग न्यायिक संस्था की विश्वसनीयता पर गंभीर प्रभाव डालते हैं और आकस्मिक मुकदमेबाजी को बढ़ावा देते हैं। यह याद रखना चाहिए कि पूर्वानुमेयता और निश्चितता

पिछले छह दशकों में इस देश में विकसित न्यायिक न्यायशास्त्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और उच्च न्यायपालिका के परस्पर विरोधी निर्णयों की बढ़ती आवृत्ति इस व्यवस्था को अपूरणीय क्षति पहुँचाएगी क्योंकि जमीनी स्तर पर न्यायालय यह निर्णय नहीं ले पाएँगे कि कौन सा निर्णय सही कानून निर्धारित करता है और किसका पालन किया जाना चाहिए।

91. हम यह भी जोड़ना चाहेंगे कि हमारी संवैधानिक व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों एवं संस्थाओं का सम्मान करे। जिन लोगों को व्यवस्था का प्रशासन और राज्य के विभिन्न घटकों के संचालन का कार्यभार सौंपा गया है और जो संविधान के अनुसार कार्य करने और उसे बनाए रखने की शपथ लेते हैं, उन्हें संवैधानिक आदर्शों के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता प्रदर्शित करके एक आदर्श स्थापित करना होगा। न्यायिक बिरादरी के सदस्यों, जिन्हें महत्वपूर्ण संवैधानिक और विधिक मुद्दों पर निर्णय लेने और व्यक्तियों एवं समग्र रूप से समाज के अधिकारों की रक्षा एवं संरक्षण करने की शक्ति प्रदान की गई है, को इस सिद्धांत का अधिक कठोरता से पालन करना आवश्यक है। न्यायिक प्रणाली के प्रभावी एवं कुशल संचालन के लिए अनुशासन अनिवार्य है। यदि न्यायालय दूसरों को संविधान के प्रावधानों और विधि के शासन के अनुसार कार्य करने का आदेश देते हैं, तो उन लोगों द्वारा संवैधानिक सिद्धांत के उल्लंघन को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता, जिन्हें कानून बनाने की आवश्यकता है।

92. ऊपर जो कहा गया है, उसके आलोक में, हम यह स्पष्ट करना उचित समझते हैं कि *यू.पी. एसईबी बनाम पूरन चंद्र पांडे* (2007) 11 एससीसी 92 में दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की गई टिप्पणियों और टिप्पणियों को ओबिटर के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और उन्हें न तो उच्च न्यायालयों, अधिकरणों और अन्य न्यायिक मंचों द्वारा बाध्यकारी माना जाना चाहिए और न ही उन पर भरोसा किया जाना चाहिए या

संविधान पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को दरकिनार करने का आधार बनाया जाना चाहिए।

10. इस चरण पर इस न्यायालय के *पिनाकी चटर्जी बनाम भारत संघ एवं अन्य* (2009) 5 एससीसी 193 और *महाप्रबंधक, उत्तरांचल जल संस्थान बनाम लक्ष्मी देवी एवं अन्य* (2009) 7 एससीसी 205 के निर्णयों का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जहाँ इस न्यायालय ने *उमा देवी* (उपरोक्त) के वाद का अनुसरण किया है और यह घोषित किया है कि नियमितीकरण तब प्रदान नहीं किया जा सकता यदि इसका प्रभाव संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करने वाला हो।

11. इस न्यायालय द्वारा उमा देवी (उपरोक्त) के वाद और ऊपर संदर्भित मामलों में प्रतिपादित परीक्षण को वर्तमान वाद पर लागू करते हुए, इसमें कोई दो राय नहीं है कि प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में अपीलकर्तागण की नियुक्तियाँ पूरी तरह से अवैध थीं और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करती थीं, जो उन सभी व्यक्तियों को अवसर की समानता की गारंटी देते हैं जो अन्यथा ऐसी नियुक्तियों के लिए पात्र थे। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, जिन्होंने नियुक्तियाँ की थीं, उनके पास ऐसा करने की शक्ति निहित नहीं थी और न ही उन पदों के विरुद्ध नियुक्तियों के लिए पात्र अन्य उम्मीदवारों के दावों पर विचार किया गया था, जिन पर अपीलकर्तागण को नियुक्त किया गया था। आश्चर्यजनक रूप से, ये नियुक्तियाँ उन अपीलकर्तागण के समायोजन के माध्यम से की गई थीं, जो मात्र 50/- रुपये के मासिक मानदेय पर स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में कार्य कर रहे थे। हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने सही अभिनिर्धारित किया है कि राज्य द्वारा संचालित औषधालयों में मानदेय पर कार्य करने वाले स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का कोई संवर्ग नहीं था। अपीलकर्तागण को स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के रूप में दी गई नियुक्ति का स्वरूप ही मानद था, जिसने उन्हें प्रति माह 50/- रुपये से अधिक के भुगतान का हकदार नहीं बनाया। यह समझना कठिन है कि मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने मानद सेवा करने वाले

ऐसे स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के पद पर कैसे नियमित/समायोजित कर दिया, जिसमें नियमित वेतनमान था और जिसे केवल उस उद्देश्य के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही भरा जा सकता था। कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि उक्त पदों पर अपीलकर्तागण की नियुक्ति प्रत्यक्षतः अवैध और पूरी तरह से अवांछित थी। चूँकि ये नियुक्तियाँ उक्त निर्देशों के अनुसरण में रद्द कर दी गई थीं, चाहे वह लगभग डेढ़ दशक बाद ही क्यों न हो, सेवा समाप्ति को इस हद तक अवैध नहीं कहा जा सकता कि उन अवैध रूप से नियुक्त व्यक्तियों की बहाली के लिए एक रिट न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। वाद के उस दृष्टिकोण को देखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा रद्दीकरण के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार करना और रिट याचिकाएं खारिज करना न्यायोचित था।

12. हमें उच्च न्यायालय की खंडपीठ के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता। तदनुसार, ये अपीलें विफल होती हैं और एतद्द्वारा खारिज की जाती हैं। कोई लागत नहीं।

बी.बी.बी. अपीलें ख़ारिज की गयीं।

**खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।**